UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180942

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H82/S25K Accession No. G.H.2343

Author सत्येन्द्र।

Title कुनाल। 1944

This book should be returned on or before the date last marked below.

हुक्काल

(एकाङ्क)

लेखक—

सत्येन्द्र एम० ए०

अध्यापक चम्पा अग्रवाल

इन्टर कालेज, मथुरा

प्रकाशक—

रामप्रसाद एण्ड सन्स,

आगरा और अलाहाबाद ।

मूल्य ।।)

प्रकाशक—

रामप्रसाद एण्ड सन्स,

आगरा और अलाहाबाद ।

तृतीय संस्करण १९४४

मुद्रक—

सत्यपाल शर्मा

कान्ति प्रेस, माईथान आगरा ।

कुनाल

एकाङ्की नाटक

प्ररोचना

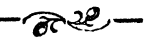

बहुत सी बातें इतिहास स्वीकार करता है, बहुत सी अस्वीकार करता है। वह जिन कसौटियों से किसी घटना की सचाई को जांचता है वे कसौटियाँ समयान्तर से लुप्त हो सकती हैं। वह दन्तकथाओं को उस समय तक ऐतिहासिक नहीं मानेगा जब तक कोई लेख, ताम्रपत्र अथवा ऐसा ही कुछ निश्चयात्मक आधार उन कथाओं को पुष्ट करने को न मिल जाय। इतिहास में हमें बारबार इस बात की सूचना मिलती है कि कुछ उपेक्षित दन्तकथायें सत्य निकलीं और एक नयी खोज ने इतिहास पर बहुत प्रकाश डाला है। क्रीट द्वीप की खुदाई से नोसस (Gnosus) की माइनोज (Minous) की सभ्यता के अनुसन्धान ने ग्रीस की कुछ दन्तकथाओं को सत्य सिद्ध कर दिया है। कुनाल भी ऐसी ही ऐतिहासिक व्यक्ति से सम्बन्ध रखने वाली, पर अनैतहासिक मानी जाने वाली दन्तकथा है। पर इससे क्या? कथा अपना काम तो करती

ही है। इतिहास की अपेक्षा कथा का अधिक मूल्य है। वह हृदयों के जिन अनुभूत सत्यों को प्रकाश में लाती है, वह इतिहास में भौतिक आधार और वाह्य घटना-चक्रों की प्रचुर महत्ता के घटाटोप में घुट जाते हैं। सम्राटों, राजाओं, नेताओं, नायकों आदि का जो रूप इतिहास प्रस्तुत करता है उसमें मानव जीवन की गम्भीर धारा का केवल सीमा और प्रवाह में बँधा हुआ रूप ही सामने आता है। उसमें उन व्यक्तियों का निजी अन्तर किंचित भी प्रकट नहीं होता। ऐसी अवस्था में मानव-जीवन के सौष्ठव की रक्षा में कथायें अधिक सहायक हैं, वे अधिक गहरे और चिर सत्य को अभिव्यक्त करती हैं। हम कथा को अधिक मूल्य देंगे। इतिहास को बलि देकर भी कथा का पूजन करेंगे।

तो कुनाल एक कथा ही सही। कुनाल का पिता तो वही सम्राट अशोक था। सम्राट ने एक नया विवाह किया था। नयी रानी का नाम तिष्यरक्षिता था। कुनाल तिष्यरक्षिता की सौत का पुत्र था। यह बात ही गृह-दाह के लिये पर्याप्त थी। कुनाल ही युवराज पद का अधिकारी था। इस बात ने तिष्यरक्षिता के द्वेष को और भी तीव्र कर दिया। इस द्वेष को बढ़ाने के लिये अनेकों अन्य कारण उपस्थित हो गये। फलतः तिष्यरक्षिता कुनाल से अत्यन्त जलने लगी। वह अब उसकी अहित कामना में लगी रहती थी।

सम्राट अशोक का कुनाल पर बड़ा प्रेम था। उस प्रेम ने कुनाल की रक्षा कवच की भाँति की, किन्तु कब तक! एक ओर कुटिलता-समग्र और उत्कण्ठावती; दूसरी ओर सज्जनता—अबोध और श्रद्धाभिभूत। कुनाल मां के हृदय के तूफान की प्रबलता और ऊँचाई को कहाँ जानता था। किन्तु उसकी माँ तो उसे मिटाने पर ही तुली हुई थी। अशोक का उस पर प्रेम

था, और वह प्रेम उसका और भी भीषण शत्रु बन रहा था। तिष्यरक्षिता यह चाहने लगी कि कुनाल राजधानी से, अशोक से दूर चला जाय।

कुनाल दूर चला गया। पाटलिपुत्र से कहीं दूर तक्षशिला में कुनाल अपनी भार्या कंचना के साथ प्रबन्ध करने के बहाने भेज दिया गया। राम के विद्रोह से जो दशरथ को दुःख हुआ वह अशोक को भी हुआ। अशोक बीमार पड़ गया। पेट की पीड़ा ने मर्मान्तक रूप धारण कर लिया उसकी मृत्यु के क्षण, सम्भवतः पास ही आगये थे। इस संकटावस्था में तिष्यरक्षिता ने वैसे ही रोग के एक रोगी को परीक्षा करके एक औषधि खोजली। जहाँ सब वैद्य हताश हो चुके थे, तिष्यरक्षिता ने चिकित्सा से सम्राट को अच्छा कर दिया। इस सारी शुश्रूषा में तिष्यरक्षिता का वही कुटिल भाव भरा हुआ था—कुनाल का नाश उसकी आँखों को आकर्षित कर रहा था।

सम्राट को प्रसन्न पाकर, बरदान में मुद्रा माँगकर उसकी मुद्रा से एक पत्र तक्षशिला के शासक को भेज दिया गया।

सम्राट की मुद्रा के साथ उसमें यह आदेश था कि कुनाल की आँखें निकलवा कर उसे राज्य से बाहर कर दो।

राजाज्ञा थी! तिष्यरक्षिता के सन्तोष का अन्तिम बाण था—तब क्या हुआ? यहीं से तो नाटक आरम्भ होता है।

———

पुरुष-पात्र

कुनाल
बुद्ध
आनन्द
तक्षशिलाधीश
बालक
उपगुप्त
अशोक
गजाध्यक्ष
पहला नागरिक
दूसरा नागरिक
परिचारक
मंत्री
दो सैनिक

स्त्री-पात्र

कंचना
तिष्यरक्षिता

१

स्थान—वन

[तक्षशिला प्रान्त का पर्वतीय वन; राजसी भूषा में कुनाल धनुष बाण धारण किये। कंचना भी आखेटक के वेष में उसके साथ है।]

कंचना—कुनाल, राजकुमार !

कुनाल—कंचना, राजकुमारी !

कंचना—हम बड़े होने आगये, हमारे सर पर उत्तरदायित्व भी पड़ गया, पर वह लड़कपन न जाने क्यों नहीं गया !

कुनाल—क्यों-क्यों ? लड़कपन से, उस लड़कपन से जिसमें जीवन की प्रभात-कोमल किरण अपनी स्निग्ध क्रीड़ा करती है, जिसमें पारिजात की निष्पाप गंध वितरित होती रहती है, तुम उकता गयी हो ?

कंचना—न, यह बात नहीं। उकताना क्या ? मैं तो पूछ रही थी कि हम बड़े किधर से होते हैं ? उत्तरदायित्व से हमारे अन्दर कोई परिवर्तन नहीं हुआ, हृदय में आज भी पहली-सी स्फूर्ति, पहली-सी कल्पनाभिलाषा जागरित है।

कुनाल—(एक ओर इशारा करके) देखो—

(धनुष बाण संभालता हुआ)

कंचना—देखो कुनाल आज भी हृदय पूर्व जैसा इस वनोपवन

की, प्रकृति की सुन्दर छटाओं में रम रहना चाहता है। (उसका हाथ रोकते हुए) फिर बताओ बड़ा हो..।

कुनाल—ठहरो, देखो वह।

कंचना—(और दृढ़ता से साथ पकड़ते हुए) मनुष्य वय में बढ़ता है, उसके साथ हिंसा में भी बढ़ता है!

(सिंह के गुर्राने की आवाज़ होती है)

कुनाल—छोड़ो कंचना—मेरा हाथ छोड़ो, इस सिंह का शिकार करने दो।

कंचना—इस बाण से? क्यों कुनाल इस बाण से ही इस सिंह का शिकार कर लोगे?

कुनाल—हाँ, इसी बाण से! इसी बाण से!!

कंचना—इसी बाण से? यह क्या बहुत तीक्ष्ण है? क्यों कुनाल, यह बहुत पैना है? तुम क्या समझते हो इससे पैनी और कोई वस्तु नहीं?

कुनाल—न, हमारे राज्य भर के परम कुशल शिकलीगर ने इसे बनाया है—देखो कंचना देर कर रही हो, कहीं सिंह की दृष्टि हम पर पड़ गयी तो फिर सँभलने का भी अवसर न मिलेगा।

कंचना—पर क्या तुम्हें सचमुच विश्वास है, कुनाल, कि तुम्हारा यह बाण परम तीक्ष्ण है। और क्या तुम्हें विश्वास है कि यह न चूकेगा—कहीं यह चूक न जाय—!

कुनाल—कैसी बात करती हो—क्या कायरों का सा मन्त्र पढ़ रही हो कंचना! कहीं क्षत्रियों का निशाना चूक सकता है। देखो—

कंचना—ठहरो, मुझे एक बात तो बताओ कि क्या तुम्हारे इस बाण से और कोई वस्तु तीखी नहीं?

कुनाल—दुनियाँ के पर्दे पर नहीं, अब मैं नहीं मानूंगा कंचना,

अब तो सिंह बहुत दूर नहीं रह गया,
है यह सिंहराज। इसका चर्म तुम्हारे देव गृह में तुम्हें आसन दिया करेगा; इसके कोमल बाल—देखो, मैं चलाता हूँ।

कंचना—तो क्या इसे मार ही डालोगे, क्या कोई ऐसा अस्त्र नहीं कि इसे बाँध लिया जाय, ऐसा बाँध लिया जाय कि वह अपनी हिंसा को भूल जाय ?

कुनाल—पागल, तुम्हारे साथ आखेट सिर दर्द मोल लेना है। छोड़ो—

कंचना—मेरे पास एक ऐसा बाण है। कुनाल—

कुनाल—(कंचना की ओर आश्चर्य से ताकता है।) क्या ?

कंचना—हाँ, कुनाल, तुम अपने इस बाण को रहने दो मुझे अपना बाण छोड़ने दो।

(कंचना वीणा निकालती है)

कुनाल—यहाँ ! इस भयंकर अवसर पर, इस यमराज के प्रकाण्ड दूत के समक्ष, इस रुद्रगण के सामने तुम्हें मखौल करने की सूझी है। हरिणों के लिए सब कोई वीणा बजाता है, सिंहों के लिए तुम्हीं, हटो।

कंचना—कुनाल ! मुझे एक अवसर दो, अवसर में कुछ भयंकरता नहीं। वह सर्वथा निर्दोष है, मनुष्य की अपनी हिंसा-प्रवृति ही भयंकर है।

(कंचना वीणा मुख से लगाती है)

कुनाल—तुम मानोगी थोड़े ही।

कंचना—(वीणा बजाती है, उसकी मुग्ध तान वायु में प्रकाश की तरह फैल जाती है। सिंह भी मुग्ध हो जाता है।

कुनाल—(उस लय पर मुग्ध होकर गाने लगता है, भूल जाता है अपने को और सिंह को।)

मधु बरसै ! मधु बरसै !!
मृदु मुस्कान विटप वल्लरि के विकच पुष्प में सरसै।
स्वर्ग सौम्य सुषमा भूतल पर सहस वदन से हरसै॥
रजत राग से रंजित मुक्ता थिरक थिरक दल परसै।
उषा-सांध्य के मंदिर भाव में झलक झलक मधु दरसै॥
स्वर में स्वर्ग सुरा सौरभ सा मद सा रस-रस बरसै।
असुर भाव की हिंसकता को सदय राग से छरसै॥

(शेर शान्त और प्रकृतिस्थ हो कंचना के पास आकर खड़ा हो जाता है, भगवान बुद्ध और आनन्द प्रकट होते हैं।)

बुद्ध—वत्स आनन्द, तुम भी ऐसी वीणा नहीं बजा सकते, तुम भी ऐसा संगीत नहीं गा सकते—

आनन्द—भगवन्, ऐसा क्यों है ?

बुद्ध—विश्व की अन्यतम विभूति क्षमा और विशाल हृदयता प्रेम के वरदान के स्वरूप जिसके विमल कोमल हृदय कक्ष में है, वही, केवल वही मनुष्य इस प्रकार हृदय का राग निर्भय गाकर विश्व के चर अचर और हिंस्र और अहिंस्र से अपना सम्बन्ध मिला सकता है—

(दोनों लुप्त हो जाते हैं।)

निस्तब्धता—

कुनाल—(जैसे भगवान बुद्ध को देख सका हो, उसकी ओर थोड़ा-सा बढ़ता हुआ—दोनों हाथ ऊपर उठाये हुए और अपने शरीर को उधर ही सीधा झुकाये हुए) कैसा मधु, कैसा आकर्षण। साथ ही एक मनोरम स्वप्न ! (कुछ स्वस्थ होता हुआ) कैसी तुम्हारी वीणा और कैसा तुम्हारा

संगीत। (और अधिक स्वस्थ होकर) कंचना, इस मृग-राज को देखो—देखो तुम्हारा शिशु बन गया है। तुम्हारी वीणा सचमुच अमोघ है। कोमलता क्रूरता से बलशालिनी है।

कंचना—कुनाल, कैसा आश्चर्य सा होगया! एक दम भव्य-अनन्त सूर्यों की दिव्यता का शीतल प्रकाश!

(कुछ सैनिकों का प्रवेश)

पहला सैनिक—अरे, युवराज तो यह रहे—

दूसरा—(आगे बढ़कर, हाथ जोड़कर खड़ा हो जाता है।)

कुनाल—कौन, आखेट बन्धु, कहो?

सैनिक—महाराज, सूर्य पश्चिम में विश्राम को गये—

कुनाल—कंचना चलो, आखेट का समय व्यतीत हुआ—

(चलने को उद्यत होतेहैं, पर्दा गिरता है)

२

स्थान—तक्षशिलाधीश का गृह

समय—संध्या

पात्र-तक्षशिलाधीश

[एक पत्र पास ही पड़ा हुआ है। कुछ बेचैनी की सी दशा में तक्षशिलाधीश कभी उस पत्र को उठाता है, कभी रख देता है और चिन्ता में मग्न हो जाता है, कभी उसास लेने लगता है]

तक्षशिलाधीश—आखिर क्यों ? संसार को पाशविकता का रोना कब तक रोना पड़ेगा ? पाशविकता—फिर, यह ग़नीमत है। इसमें केवल लिप्सा और स्वार्थ की अति है—यहाँ तक भी ग़नीमत है !! पर वह दुर्दान्त रौद्र ताण्डव, हिंसा दुर्भावनाओं का उच्छृङ्खल नाट्य—बस बहुत हो चुका। हे संसार की सकल कोमल और उदार विभूतियों के आश्रय ! तू क्यों रुका हुआ है—तू अपने हृदय का विपरीत रूप दिखा और संसार पर वज्र गिरा दे—पुत्र की आँखें निकाल लो—ऐसा पिता कहता है—प्रलय !

(कुछ देर चिन्ता की मुद्रा में बैठा रहता है—फिर टहलने लगता है—)

दासता या कर्तव्य ?

इस काले पत्र का एक एक अक्षर मेरे हृदय में आग की चिनगारियों की तरह हू हू कर रहा है। राजाज्ञा कहती है, कुनाल की आँखें निकाल लो—पर, क्यो? क्या भोलेपन, सरलता, और सुन्दर शील का यह दण्ड है? नहीं मैं कदापि इस राजाज्ञा का पालन नहीं करूँगा। निरपराध—उज्ज्वल दुग्धफेन, शरद्-चन्द्रिका में फूले-फूलों की कोमलता, इनका हनन कौन आत्माशील व्यक्ति कर सकता है? ऐसी आज्ञाएँ पैरों तले कुचल डालनी चाहिये।

(पत्र को पृथ्वी पर पटक कर जूता रखना चाहता है, एक दम चौंक कर।)

पर—

सत्यानाश हो इस परतन्त्रता का। इसने मानवीयता की हत्या कर डाली है। मैं सेवक हूँ, दास हूँ, मुझे राजाज्ञा का अपमान नहीं करना चाहिये। यह शेख-चिल्लियों की सी बातें करना अनुचित है।

(व्यग्र होकर)

पर—

खिले हुए बड़े कमल सी, नीलाकाश के समान मनोहारी उन सुन्दर आँखों को, जिनमें पवित्र भावनाओं का प्रकाश प्रस्फुटित है, क्या उन आँखों को मैं निकालूँगा? कदापि नहीं—

पर—

सम्राट्! तुमसे यह आशा नहीं थी। कुनाल जैसे निष्पाप व्यक्ति से कोई अपराध स्वप्न में भी नहीं हो सकता। जहाँ इस प्रकार प्रमाद आगया हो वहाँ तो वेतनभोगी होना महापाप है।

मेरी आत्मा जो कहेगी वही करूँगा, वही मेरा कर्त्तव्य है। मैं किसी और मलिनता को अपने हृदय में नहीं आने दूँगा। यही तो मनुष्य-कर्त्तव्य है। भाड़ में जाय यह पद और यह मान। मैं अभी त्याग-पत्र लिखता हूँ। मैं इस राजाज्ञा को कभी नहीं पाल सकता।

(त्याग-पत्र लिखने बैठता है। उसी समय एक छोटा सा बालक गाता हुआ आता है।)

बालक—सृष्टि में कैसी प्रिय मुसकान—
विगत निशा की उषा सुन्दरी अरुणोदय का मान।

(प्रवेश करके भागता हुआ आकर ताली बजाता हुआ)

देखो-देखो, ओहो-ओहो, खूब रहा-खूब रहा, हा·····हा·····हा·····हा

अधीश—(चकित होकर उधर देखता है, कुछ न देख कर झुँझलाता हुआ)

क्यों, क्यों उपद्रव मचाता है, चुप।

बालक—(कुछ देर चुप रहता है, उसका मुख गम्भीर हो जाता है, अपराधी की भाँति खड़ा हो जाता है)

(फिर अधीश को काम में लगा देखकर, फिर द्वार की ओर देखकर हँस पड़ता है।)

हि-हि-हि ऊ, ऊ, ऊ, देखो, देखो ?

अधीश—(उत्सुक होकर) आखिर क्या बात है ? क्यों दंगा मचा रहा है ?

बालक—देखिये, आप भी तो देखिये—वह पगली है न, बिलकुल पगली है।

(चुप हो जाता है, फिर एक दम खिलखिला पड़ता है)

सच, बिलकुल पगली है—आप ही बताइये, ताली दोनों

हाथों से बजती है कि एक हाथ से। ओष्ठ दोनों चलते हैं कि एक। बताइये—वह देखो पगली है। बताइये—

(एक हाथ को स्थिर रख कर दूसरे को उस पर मारते हुए—)

यह ताली हुई या

(दोनों हाथों को एक अन्तर से एक साथ लाकर मारते हुए)

यह ताली हुई। वह देखो पगली कुछ नहीं समझती।

अधीश—भाग, यह भी कोई बात हुई। चल, शोर मत मचा।

बालक—बात ही नहीं हुई? वाह! नहीं बता सके तो बात ही नहीं हुई! हूँ—मैं समझ गया आप भी नहीं जानते। भगवान ने उसे मेरी बहिन क्यों बनाया? क्यों? बताइये आप! (इतना कहते-कहते अधीश के पास पहुँचता है और झटक कर लिखा हुआ काग़ज़ लेकर भागता है—)

अधीश—(घबड़ा कर) है, है, हैं! अरे बड़ा आवश्यक पत्र है, ठहर—

बालक—(द्वार पर रुक जाता है)।

अधीश—लाओ, यहाँ लाओ, यह कागज़ यहाँ लाओ।

बालक—(द्वार पर खड़ा होकर पत्र वाला एक हाथ आगे बढ़ा कर)। लो, लो।

अधीश—ला, यहाँ ला।

बालक—नहीं, यहाँ से ले जाओ। मैं नहीं आता।

अधीश—ला।

बालक—ऊँ, यों धमको में नहीं आऊँगा। क्षत्रिय माता का रक्त है मेरी नसों में, एक दिन सिंह को पछाड़ूँगा अभी से डरायेंगे आप। मैं डरूँगा नहीं! आप ले जाइये। ले जाइये।

(और हाथ उस ओर लपकाता है।)

(अधीश—कुछ उठने का सा उद्योग करता है।)

बालक—उठिये नहीं। मैं जानता हूँ, आप पीटेंगे। क्षत्रिय-कुमार कभी मार नहीं खायेगा। आप मत उठिये। उठे तो पत्र फाड़ डालूँगा।

अधीश—कहाँ से आगया, असमय। तुम्हारी धृष्टता के आगे कौन न झुँझलायेगा। लाओ, पत्र लाओ। देखो, बेटे आवश्यक पत्र है।

(प्यार दिखलाते हुए)

बालक—(सिर हिलाकर) तो नहीं दूँगा। अब नहीं दूँगा।

(अधीश—उठकर बालक की ओर बढ़ता है।)

बालक—मत आओ, फाड़ा मैंने। फाड़ा, लो!

(फाड़ डालता है)

अधीश—अरे फाड़ डाला, क्षत्रिय-बालक कहीं ऐसे क्लेशित करते हैं, ऐसे हृदयहीन होते हैं।

(बालक को पकड़ने चलता है। वह भाग जाता है, वह भी पीछे चला जाता है।

परदा गिरता है।

३

स्थान—वही कमरा

(कुनाल का प्रवेश)

कुनाल—आखेट में मन बहल जाता है। महल में आते ही मगध की स्मृति हरी हो जाती है। हृदय में उस मातृ-मन्दिर को उस पितृालय को देखने की एक हुड़क सी पैदा हो जाती है। प्यारी जन्म-भूमि—

तेरे रज-कण से मेरा यह बना हुआ है सुन्दर तन।
तेरी कोमल विमल भावनाओं से भरता मेरा मन॥
तेरे कण कण में देखा है प्रतिबिम्बित अपना जीवन।
तेरा शस्य भरा श्यामल-सा गात हमारा जीवन धन॥

हरे भरे वे खेत मधुरिमामय से फल वे सुन्दर फूल।
जिनकी मृदु मुस्कान छिपाये बैठी है मेरी ही ऊल॥
तेरे इन सुन्दर गहनों में कहीं फँसा है मेरा मन।
तेरे रज-कण से मेरा यह बना हुआ है सुन्दर तन॥

माता है तू दूध पिलाती तेरे जल ही पावन पय।
अपने वक्ष विशद से देकर हमें खिलाती अन्न सदय॥
कूक कोकिला की बोली में प्रात-गान तू गाती है।
हमको नव संदेश सुनाकर मानो मृदुल जगाती है॥

किञ्चित व्याकुल देख हमें, तेरा चल जाता व्यजन पवन।
तेरे रज-कण से मेरा यह बना हुआ है सुन्दर तन॥

वहाँ की प्रत्येक वस्तु जैसे अपनी हो, अपने से जैसे कोई नाता हो। वे वृक्ष जिनके नीचे बालकपन में खेले—आज बूढ़े दादा की तरह अपनी शाखाऐं फैलाये भेटने को उत्सुक दीखते हैं; वे कूप शीतल निर्मल जल से स्वागत करने को उमगते दिखाई पड़ते हैं। वहाँ का प्रत्येक पक्षी मधुर ध्वनि में मेरा ही नाम लेकर प्यार से मानों मुझे बुलाता हो। वहाँ की पथ-रज मेरे शरीर पर लिपटने के लिये प्रेम से आलिङ्गन करने के लिये उत्सुक हो—वहाँ के गढ़े मानो मुझे अपना समझ कर ही मेरे मार्ग से हट जाते हों। वहाँ के ढोंके प्रेम से पिघल मेरे पैरों तले आकर रुई के समान कोमल और समान हो जाते हों। कैसी है वहाँ की मिट्टी की मेरे ऊपर ममता—उसकी किसे न याद आयगी! किसके हृदय को जन्म-भू, इस प्रकार लुभायगी नहीं? अब तो पिताजी की स्मृति आकर सताती है। पूछूँ अधीश से, मगध से कोई समाचार क्यों नहीं आया?

मेरा मन भूले पक्षी-सा भटक रहा गगनांगन में।
पूर्व दिशा से लिये श्यामता निशा आ रही निर्जन में॥

रहने का स्थान नहीं है, महा खोखला है आकाश।
अन्धकार आनेवाला भय दिखलाता है छन छन में॥

कौन जलाता है ये दीपक? कहाँ? दूर क्या आश्रय है?
कभी भला क्या मिल सकता है, कुछ विराम इस जीवन में?

किसने यह अनन्त विस्तारा? क्यों इसको अज्ञेय किया?
किसने मस्त कुटिलता में यह दुखद उड़ान भरी मन में?
हैं, ये काग़ज़ के टुकड़े कैसे पड़े हुए हैं? (उठाकर पढ़ता है)

यह क्या? तक्षशिलाधीश तुम विद्रोही होना चाहते हो? राजाज्ञा को न पालन करके राजपद त्यागना चाहते हो? पर तुम नहीं जानते राज-विद्रोही को चैन नहीं मिल सकता।

(चिन्तित हो जाता है।) (कंचना का प्रवेश)

कंचना—कुनाल, कुनाल, यह तुम्हें क्या होगया! तुम चिन्तित क्यों हो?

कुनाल—ऐसा प्रतीत होता है, कोई भयंकर दुर्घटना होने वाली है। वह देखती हो, (पूर्व की ओर इशारा करता है।) पूर्व की ओर, वहाँ, जहाँ पृथ्वी और आकाश मिल रहे हैं, कुछ काले बादल दिखाई देते हैं, वे मुझे बड़े भयंकर प्रतीत होते हैं।

कंचना—बादलों में क्या भयंकरता हो सकती है? वे तो नियम के साथ अपना कर्त्तव्य करने को उमड़े हैं।

कुनाल—कंचना! इसी ओर तो हमारी जन्म-भूमि है। संध्या की इस उदासीन मुद्रा के साथ मेरे हृदय में अपने घर के लिये एक तीव्र उत्कण्ठा जाग उठी है।

कंचना—ठीक ही, कुनाल, अपने उन घरों को छोड़े बहुत दिन हो चुके। यहाँ का काम भी हो चुका, पर अभी तक पिताजी ने कोई संदेश क्यों नहीं भेजा?

कुनाल—यही तो, इसमें अवश्य कोई रहस्य है। पिताजी की इतनी उपेक्षा क्यों? देखो मेरे भय को यह अधीश का पत्र और भी बढ़ाता है।

कंचना—(पढ़कर।)

यह तो त्याग-पत्र है। आखिर कुनाल, अधीश ऐसा क्यों कर रहे हैं? 'राजाज्ञा का पालन नहीं कर सकता।' कौनसी राजाज्ञा?

कुनाल—पता नहीं, यह समस्या सुलझानी होगी। अधीश जैसा सरल और कुशल व्यक्ति अपना पद-त्याग करे, अवश्य ही कोई भारी बात है। क्या अधीश किसी प्रकार का विद्रोह.....

कंचना—नहीं-नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। अच्छा हो, इस विषय में आप शीघ्र ही अधीश से बात करलें—

कुनाल—अच्छा तुम चलो, मैं अधीश से बात करके आता हूँ। एक यह भी तो प्रश्न है, आखिर त्याग-पत्र लिखकर फाड़ क्यों डाला गया ? अवश्य ही कोई रहस्य है !

प्रस्थान

४

(बालक भागता हुआ आता है)

मैं पकड़ाई नहीं आ सकता। अ-अ.....।

(भाग जाता है। अधीश का प्रवेश—)

अधीश—भाग जा। यह भी क्या अवस्था है? न कोई चिन्ता न दुख। इसे क्या पता कि इसने कितनी हानि कर डाली। पर, त्याग-पत्र फिर लिखा जा सकता है। ऐसे राजा की आधीनता स्वप्न में भी योग्य नहीं—

(कुनाल प्रवेश करता हुआ)

कुनाल—यह बात अधीश के अयोग्य है। शील और शिष्टाचार के विरुद्ध है—अधीश—

अधीश—कौन? कुनाल! तुम आगये। कितने सुन्दर हो तुम—तुम्हारे अन्दर कितनी पवित्रता है। ओ''इन्हीं आँखों को फोड़ने को कहा गया है—कुनाल! तुम्हारी ये आँखें—जिन्होंने कभी टेढ़ा होना सीखा ही नहीं; जिनमें दया, प्रेम और कृतज्ञता की त्रिवेणी बह कर न जाने कितनों को पवित्र किया करती है। कैसी भोली दृष्टि है—कुनाल, एक हाल के लिखे-ओससिक्त फूल का विकास है इनमें—इन्हीं को फोड़ा जाय? कौन वज्र हृदय होगा?

कुनाल—क्या कह रहे हो अधीश? आज इतनी विकलता

क्यों है ? इतने अधीर क्यों हो रहे हो ? बात क्या है ?

अधीश—बात, बात क्या बतलाऊँ ? मैंने कभी ऐसी पीड़ा अनुभव नहीं की । ओफ् ! गुलामी, दासता की जंजीर का बोझ, कुनाल ! मुझे आज ही विदित हुआ है ? पर नहीं, मैं दासता में बँधा नहीं रहूँगा । मैं अपनी आत्मा की रक्षा के लिए सब को चूर कर डालूँगा, पर गर्हित राजाज्ञा का पालन नहीं करूंगा कदापि नहीं करूँगा । किसी भी निरपराध को किसी भी नवनीत हृदय खिलते पुष्प को उसकी दिव्य विभूतियों से रहित नहीं करूँगा—बस, नहीं करूँगा !

कुनाल—भद्र ! इतना आवेश, इतनी उत्तेजना ।

अधीश—कुनाल, बहुत सावधान रहने पर भी, मेरा हृदय आज टूक-टूक हो गया है । संसार की निर्दयता का आज, इस बुढ़ापे के समय मुझे पता चला है । कुनाल, मैं कितना तुम्हें चाहता हूँ । तुम मेरे रक्त से उत्पन्न नहीं, पर मैंने तुम्हें अपना पुत्र समझा । तुम मेरे इस गृह के चमकते चाँद बने । तुम्हारी क्रीड़ाओं ने यहाँ जग-मगाहट पैदा करदी । फिर तुम्हारे साथ·····पिता का हृदय कैसा हो सकता है । कुनाल·····।

कुनाल—मान्य, मैं कुछ नहीं समझा, मैं हतबुद्धि हूँ । कुछ बतलाइये तो सही आखिर वह ऐसी कौनसी अनहोनी बात है, जिसने आप जैसे धीर गम्भीर को इतना विकल कर दिया है ।

अधीश—मत पूछो—बेटे, मत पूछो ! उसे मुख पर लाने से मेरा

हृदय ही नहीं, पृथ्वी का हृदय कम्पित हो जायगा। संसार में एक भयंकर क्रांति फैल जायगी। अविश्वास, घोर अविश्वास, फिर सारे सम्बन्धों का नाश !

(दोनों कुछ देर स्तब्ध रह जाते हैं। अधीश पत्र निकाल कर देता है)

अधीश—लो, इस बज्र-दूत को लो—आह !

कुनाल—(उसे पढ़ता है) पिताजी की आज्ञा है कि कुनाल की दोनों आँखें निकाल लो, और उसे भिक्षु बनाकर देश से निकाल दो। पिताजी की मुद्रा है। इसमें संदेह को कोई स्थान नहीं।

(कुछ चिन्ता में पड़ जाता है)

अधीश—कुनाल !

कुनाल—भद्र !

अधीश—देखो, यह प्रियदर्शी अशोक का नहीं हो सकता।

कुनाल—उन्हीं की मुद्रा है, मैं भली भाँति जानता हूँ। यह उन्हीं की मुद्रा है, उन्हीं की आज्ञा है।

अधीश—उन्हीं की आज्ञा है। अशोक की आज्ञा होगी, तुम्हारे पिता की नहीं। पिता कभी ऐसा क्रूर नहीं हो सकता।

कुनाल—ठहरो अधीश, पिता को क्रूर मत बताओ। संसार की सभी सदय विभूतियों से पिता बनाया गया है, उसमें क्रूरता कभी आ ही नही सकती—मुझे विश्वास है इसमें अवश्य ही मेरा कुछ हित है ? यह आज्ञा पालनीय है।

अधीश—ऐं, क्या ?

कुनाल—पिताजी की यह आज्ञा पालनीय है।

अधीश—अनुचित आज्ञा है।

कुनाल—पुत्र के लिये पिता की आज्ञा अनुचित नहीं हो

सकती। जिस तपस्या ने मुझे उनका पुत्र बनाया है, उनके रक्त की जिस पवित्रता से मैं उत्पन्न हुआ हूँ—जिसने अपने कोमल करों से मुझे अपनी गोद में खिलाया है, जिसने अपनी सारी चिन्तायें, अपने सारे आमोद, अपने सारे सुख मुझे इतना बड़ा बनाने में व्यय कर दिये—वही कभी अनुचित आज्ञा देगा, वह आज मेरा अहित सोचेगा—असम्भव है। जो पुत्र पिता की आज्ञा में अनौचित्य देखता है, वह पुत्र नहीं! अधीश—पिता-पुत्र जैसा घनिष्ट, पवित्र और अन्यतम सम्बन्ध सृष्टि में दूसरा नहीं।

प्रधीश—कुनाल—कितनी क्रूर आज्ञा है।

कुनाल—(मुस्कराते हुए) हः हः क्रूर बतलाते हो अधीश. पञ्चभूतों के बने इस शरीर के साथ क्या क्रूरता हो सकती है? दर्जी वस्त्र को काट डालता है, उसे कोई क्रूर नहीं कहता। मिट्टी के लोंदे को कुम्हार यों ही पीटता है, उसे क्रूर कभी नहीं कहा। पृथ्वी पर सैकड़ों फावड़े और हल चले, पर किसी ने क्रूर नहीं बतलाया—इस पञ्चभूतों की बनी जड़ वस्तु के साथ क्या क्रूरता हो सकती है? मैं बड़ा भाग्यशाली हूँ, मुझे एक अवसर तो मिला कि मैं पिता की आज्ञा का पालन कर सकूँ। पिता का बड़ा ऋण होता है अधीश! जिसे अपने पिता की सेवा का अवसर मिले उसी पर पिता की कृपा समझनी चाहिये। अधीश, संकोच मत करो—पिता की आज्ञा पालने के लिए मैं तय्यार हूँ।

अधीरा—कुनाल ! कुनाल, तुम—अहा कैसी भोली, कैसी सुन्दर हैं ये आँखें।

कुनाल—इन्हें फोड़ दो अधीश, पिता की आज्ञा है। इस मायावी संसार को ये मलिन मूर्तियाँ मुझे न दिखाई पड़े। मेरा अन्तर्जगत प्रकाशित हो जायगा।

अधीश—अहा; कैसी बोलती सी आँखें हैं।

कुनाल—अधीश ! अधीरता छोड़ो, राजाज्ञा का पालन करो। मेरी इन आँखों को फोड़ दो। फोड़ दो, जिन्हें पिता नहीं चाहते उन्हें मैं नहीं रख सकता। उन्हीं के हाड़ मांस की बनी, ये आँखें उनकी आज्ञा पर निछावर हैं, फोड़ दो।

अधीश—(अधीरता छोड़ते हुए) नहीं, कुनाल मैं तुम्हारी इन आँखों को नहीं फोड़ूंगा।

कुनाल—राजाज्ञा का पालन नहीं करोगे—

अधीश—निश्चय, इस अमानुषिक राक्षसी आज्ञा का पालन मैं नहीं कर सकता, नहीं कर सकता।

कुनाल—अधीश, अधीश ! मेरी प्रार्थना पर ही फोड़ दो (कुछ रुआसा सा होकर) तुम कितने उदार हो, मेरे कहने से मेरी आँखें फोड़ दो। मेरे पिता—उनकी आज्ञा, उसे पालन करने में देर मत करो।

अधीश—न।

कुनाल—न ? न, क्यों ? फिर पूछता हूँ अधीश इस राजाज्ञा का पालन करने को तैयार हो या नहीं ?

अधीश—(मौन)।

कुनाल—अच्छा-अच्छा तो बाध्य होकर मैं ही इस राजाज्ञा का पालन करता हूँ। एक बार बस एक बार पिताजी

के दर्शन यह कर पाती, फिर···फिर कोई चिन्ता न थी, एक बार मगध को···पर नहीं, पिता की आज्ञा के सामने कुछ नहीं, अधीश तुम नहीं·····तो लो—

(अपनी दो उँगलियों से अपनी आँखें फोड़ लेता है)

अधीश—(रोकने को बढ़ता हुआ) यह क्या ?

कंचना— (प्रवेश करके अवाकसी कुनाल की ओर एक हाथ से इशारा-सा करती हुई)

यह क्या ? (चित्रवत्)

कुनाल—संसार की पूज्यतम वस्तु की अकिंचन भेंट ।

कंचना—यह क्या हुआ ? कुनाल तुम्हारी आँखें क्या हुईं ? इतनी देर में ही यह काण्ड हो गया !

कुनाल—क्षुब्ध मत हो कंचना ! सूर्य और चन्द्र से विहीन रात्रि भी क्या सुन्दर नहीं होती ? हृदय-मन्दिर की बाहरी खिड़कियाँ बन्द हुई हैं । अब अन्तर का प्रकाश दिखायी पड़ेगा । संसारी माया का चकाचौंध, इस मन्दिर की मनोहर मूर्त्तियाँ नहीं देखने देता था । यह शाप नहीं पिता का वरदान है, कंचना ।

कंचना—पिताका—पिताका क्या सम्राट् अशोक का ?

कुनाल—हाँ उन्हीं पूज्य का—उन्हीं पूज्य का ही यह आदेश है, जिसका पालन मैंने किया है । कंचना तय्यार हो, जाओ । उन्हीं पूज्य के आदेश से मुझे तुम्हें भी छोड़ना होगा—

कंचना—मुझे-मुझे क्या ऐसा आदेश पिताजी का है किस क्रूरता ने मेरे उन पूज्य की कोमल भावनाओं पर तुषार डाल कर ठण्ठा कर दिया ? उनका ऐसा आदेश—मुझे छोड़ जाने का आदेश !

कुनाल—आदेश है कि मैं भिक्षु बन जाऊँ। कितनी अभिलाषा है कि मैं भिक्षु बन जाऊँ। कितनी अभिलाषा थी मेरी भिक्षु बनने की, कंचना, वह इस रूप में पूरी हुई। भला फिर तुम कैसे मेरे साथ रह सकती हो।

कंचना—क्यों कुनाल; क्या मुझे दुर्बल समझते हो क्या मुझ से भय करते हो।

कुनाल—न—यों ही; तुम्हारी अवस्था का ध्यान—

कंचना—तुमने अन्याय किया। मेरे ऊपर—नहीं, भारतीय स्त्री जाति पर कुनाल! तुम्हारे इस दुःख में क्या मैं अकेला छोड़ सकती हूँ। मेरी नसों में भी वीर-रक्त है। हम लोग कठोर समय पड़ने पर वज्र से भी कठिन बन सकती हैं। हमारी इच्छा के आगे अग्नि की धधकती शिखा भी ठण्डी है। सागर का अतुल जल भी धरातल है। यदि पत्र में पिताजी ने मेरा नाम लेकर स्पष्ट निषेध न किया हो, तो आप मुझे न छोड़े। मैं आपके साथ चलूंगी।

कुनाल—कंचना, मैं भिक्षु होऊंगा।

कंचना—मैं भिक्षुणी बनूँगी।

कुनाल—हमारा तुम्हारा सम्बन्ध—

कंचना—सम्बन्ध, कुनाल, यह तो चिन्तनीय नहीं। हम दोनों ही कौमार व्रत लिए हुए हैं। फिर भी यदि निश्चय की आवश्यकता हो तो—तुम मेरे भाई, मैं तुम्हारी बहिन।

अधीश—धन्य, धन्य, भारत देवि! कैसी दिव्य तुम्हारी कल्याण कल्पना है। पति-पत्नी और भाई-बहिन के प्रेम में कितना अन्तर है? वासना और पवित्रता का संसार के सामने तुमने आदर्श रख दिया।

कुनाल—अच्छा कंचना तो, चलो—

(दोनों)

बुद्धं शरणम् गच्छामि ।
संधं शरणम् गच्छामि ।
धर्मम् शरणम् गच्छामि ।

(दोनों प्रस्थान करते हैं)

अधीश—(अपने गले की माला तोड़कर रत्न और फूल उन पर बरसाता हुआ) जाओ ! दिव्य लोक की मूर्तियो !! पिताने तुम्हें क्रूर आज्ञा दी अथवा अनुचित आज्ञा दी यह तो सोचने की बात ही नहीं रही। तुम्हारे चरित्र की दिव्यता ने उसे भी सुन्दर बना दिया । तुमने बता दिया कि मनुष्य भी इस प्रकार देवता हो सकता है। अहः, जाओ ! जाओ !!

(बालक प्रवेश करके)

क—जाओ ! जाओ !! हमारी माता का आशीर्वाद तुम्हारे साथ हो।

———

५

स्थान—मगध का उपवन

समय—संध्या

पात्र—उपगुप्त और अशोक

(अशोक हरिण से क्रीड़ा कर रहे हैं। वह कभी उनके पास आता है, उनसे अपना सिर रगड़ता है, कभी कुलांच मार कर दूर भाग जाता है। अशोक भी उछलते हुए कुछ दूर तक उसके पीछे भागते हैं)

अशोक—भूल गया, प्यारे शावक ! आदमी तो व्यस्त रहता है सैकड़ों और करोड़ों से उसकी भेंट होती है। यदि वा व्यवहार-बुद्धि के भ्रम से अपने मित्रों को भूलने की अनुदारता करे तो चिन्ता नहीं। पर तुम भी भूलने लगे। तुम तो कभी ऐसे कृतघ्न नहीं थे। अथवा हो सकता है बहुत बीमार रहने के कारण मेरी आकृति में परिवर्त्तन आगया हो।

(हरिण उनकी ओर देखने लगता है)

(अशोक—प्यार से उसको बहलाते हुए)

आओ छौने आओ। यहाँ आओ। तुम्हारी चिन्तियाँ गिनूँ। कैसे प्यारे हो तुम, कुनाल के खिलौने। कुनाल

(चिन्ता में मग्न हो जाता है।)

वत्स कु.....

(उपगुप्ताचार्य का प्रवेश)

(अशोक कभी बतख के बच्चों से खेलते हैं। उसे पकड़ कर उस पर हाथ फेरते हैं)

अशोक—कितने महीनों के बाद आज पहले दिन मुझे इस विस्तृत नीलाकाश के दर्शन मिले हैं। यों तो—यह सदा ही भला और सुन्दर है। बहुत दिनों के बाद आज इसका अतल नील विस्तार आज ही मुझे अपने स्वागत के लिये सजा दीखता है। इस दीर्घ-काल की रोग-शय्या के बाद आज मैंने वाटिका की इन पुष्प-कलियों को देखा है, ऐसा प्रतीत होता है कि कलियाँ मुझे प्यार करने को उत्कंठित हैं। मेरी ओर झुकी हुई हैं। कैसी ममता है ?

उपगुप्त—(आश्चर्य में अशोक की ओर संकेत करते हुए) भारत का एकछत्र सम्राट्—इन पशुओं से क्रीड़ा कर रहे हैं मानव समाज को प्रपंच—प्रवंचनाओं से उकता कर ईर्षा स्पर्धा की भयंकर आग से झुलस कर—मनुष्य कुछ देर को इन खिलौनों से मन बहला लेता है। कैसा ठाट, कैसा आडम्बर है, मकड़ों के जाल की तरह—पर जंगल के इन जंगली प्राणियों में कैसा उज्वल जीवन, स्फूर्तिमय जीवन है।

(अशोक चौंक कर, आचार्य को देख कर प्रणाम करता हुआ)

अशोक—अहो भाग्य, आचार्य, आप आगये ! इनमें आकर मन लग जाता है।

उपगुप्त—ठीक ही, अशोक ! इनमें आकर तुम मुक्त हो जाते हो। इनके सामने तुम मनुष्य हो, इनमें आकर तुम मनुष्य हो, सम्राट और चक्रवर्ती नहीं। यहाँ—इनमें

मनुष्य जैसे अपने कुटुम्ब में आ जाता है, वही स्वाभाविक सरलता का एक मात्र खेल रह जाता है। यहाँ तुम्हारी परख स्वाभाविक मनुष्य गुणों पर होती है। इनमें मनुष्य अपना सारा बड़प्पन भूलकर अपनी स्वाभाविकता के धरातल पर आजाता है। अपनी सीमा में रहने पर ही आनन्द है।

अशोक—ऐसा क्यों है ? आचार्य !

उपगुप्त—पुष्प की माला बनती है, उसे देवताओं पर चढ़ने का सौभाग्य प्राप्त होता है। पर वह हँसता है अपनी डाल पर ही। अपने वृन्त पर पुष्पों के साथ ही वह हिलोरें लेता है। चेतन जीवन की अनन्त धारा में विकारों के टापुओं पर मनुष्य ठहर कर एक कृत्रिम जीवन को अपना जीवन समझने लगता है। जब वह अपने मूल स्रोत में डुबकी लगाता है, वह फिर वही स्फूर्तिवान हो जाता है।

अशोक—तभी यहाँ मनुष्यों को अपनापन मिलता है। तभी यहाँ उसे स्फूर्ति मिलती है। आचार्य यह शावक तो मुझे बिल्कुल भूल गया मालूम होता है।

उपगुप्त—बीमारी शाप और पाप दोनों हैं, सम्राट ! मनुष्य के अपने पाप से बीमारी होती है। और वह शाप की तरह मनुष्य की कमनीयता हर लेती है। तुम्हारे एक माह के भयंकर रोग ने तुम्हारी आकृति बिल्कुल बदल दी है। तुम्हें मनुष्य भी देर में पहिचानेंगे, यह शावक तो भोला है।

अशोक—यह शावक लगता कैसा प्यारा है ? भगवन्, इसे देखकर कुनाल की याद आजाती है। मेरा हृदय

कैसा हो जाता है ? आचार्य—बहुत दिन हो गए, कितनी उत्कट अभिलाषा थी कुनाल को एक बार देखने की, रोग शय्या पर पड़े पड़े कुनाल ही का ध्यान रहता था। जी में एक हुड़क उठती थी कि दौड़कर जाऊँ और कुनाल को देख आऊँ। आचार्य, आज मैंने इस अनन्त नील विस्तारशील आकाश को, आज बहुत दिनों के बाद देखा है, इसके साथ मेरे हृदय में कुनाल को देखने की तीव्र अभिलाषा उत्पन्न होगयी है। उसे आज तक्षशिला से बुला भेजा जाय।

उपगुप्त—अशोक, प्रियदर्शिन्—

(चुप हो जाता है)

अशोक—कहिये आचार्य चुप क्यों होगये ?

उपगुप्त—अशोक तुम बीमारी के कारण हृदय के कमजोर होगये हो। किसी के लिए इतनी ममता क्यों ?

अशोक—क्यों आचार्य ! कुनाल के लिए मेरा हृदय कुछ ऐसा ही रहता है।

उपगुप्त—पर प्रियदर्शी कुनाल तो·····

अशोक—क्या, आचार्य, क्या ? शंकाओं का, भ्रम का एक समुद्र सा उमड़ा चला आ रहा है, पर, क्या।

उपगुप्त—पर आज ही तक्षशिला के दूतों ने आकर यह समाचार सुनाया है कि कुनाल भिक्षु होगये।

अशोक—कुनाल भिक्षु होगये····और···कंचना—

उपगुप्त—कंचना भी।

अशोक—हा···(सिर पर हाथ रख कर बैठ जाता है) (चौंक कर)—आचार्य यह त्याग मुझसे जबरदस्ती कराया गया है। मेरी इतनी सामर्थ्य न थी—मेरा कुनाल मुझसे छीन लिया।

उपगुप्त—अशोक सम्राट ! भारत के राज्य सूत्रधार और धर्म के प्रतिष्ठापक— अधीर होते हैं आप ?

अशोक—आचार्य ! मेरी सहन शक्ति से बाहर होगया है— आज मेरी सारी कमजोरियाँ विकल होकर हृदय में भयंकर हाहाकार मचा उठी हैं। एक, दो—मैंने सभी कुछ धर्म पर निछावर कर दिया—पर कुनाल—

उपगुप्त—अशोक ! यही समझ कर धैर्य रक्खो अशोक, कि यह तुम्हारे हाथ की बात नहीं थी।

अशोक—हां···देखो देखो—आचार्य ! कलिंग का वह नर संहारकारी ताण्डव युद्ध ! मैंने न जाने कितने माता पिताओं को उनके पुत्रों से पृथक कर दिया—सदा के लिए उनकी गोद से छीन लिया, युवावस्था के जोश में नहीं समझता था कि पिता को पुत्र की कितनी चाह होती है। आज जान पाया है—आचार्य—आचार्य— हृदय में एक आग है—कलिंग के उस महारौरव ध्वंस को अपने हाथ से करके जैसी आग लगी थी वही आग आज मेरे हृदय में फिर जाग उठी है—पर वह युवावस्था की आग थी, यह बुढ़ापे की आग है— आचार्य ! यह मुझे भस्म कर डालेगी।

उपगुप्त—अशोक ! कैसी भूली भूली बातें कर रहे हो—कुनाल को क्या तुमने अपना खिलौना समझ लिया है। वयोधिकों की यह अधीरता ही तो उन्हें पुत्रों की दृष्टि में हलका कर देती है। आखिर कुनाल का विवेक और बुद्धि-विकाश होने वाली प्रतिभा—वह तुम्हारी ममता की गैंद नहीं बन सकती थी। वही ईश्वरीय प्रकाश समान रूप से कुनाल में है जो तुममें है। फिर

वह यदि मुक्त होकर अपना मार्ग विस्तृत करता है—अपने क्षेत्र को बढ़ाता है, उसमें दुखी होने की क्या बात है ? वह जब अपनी स्वेच्छा से-भिक्षु हुआ, तो क्या तुम उसकी स्वेच्छा पर शासन करके उसे कायर बना डालना चाहते थे।

अशोक—स्वेच्छा से-कुनाल स्वेच्छा से भिक्षु हुआ ?

उपगुप्त—यहाँ दूतों से यही समाचार मिला है।

अशोक—स्वेच्छा से-मुझसे सलाह भी नहीं-आचार्य-वही कुनाल-वही कुनाल जिसकी सारी भावनायें मेरे अनुकूल थीं, जो मेरे बिना पूछे हिलता तक नहीं था-वही कुनाल स्वेच्छा से भिक्षु होगया—उसके लिए मैं इस बुढ़ापे में कुछ भी न रहा। कैसा दुखद परिवर्तन है ?

उपगुप्त—परिवर्तन—

अशोक—आचार्य ! आपने मुझे सद्मार्ग बतलाया है। यह आज क्या होगया ? मेरा कुनाल ! मैं वृद्ध होगया हूँ, आचार्य-अधिक क्या कहूँ ? मैंने उसे कितना प्यार किया; सब निष्फल।

उपगुप्त—निष्फल क्यों ! अशोक—वह तो तुम्हारी सुरभि अब देश देशान्तरों में फैलायेगा—भिक्षु बनकर उसने प्रत्येक भिक्षु को तुम्हारा कुनाल बना दिया उसने अपना छोटा रूप, बड़ा कर दिया—इसमें दुखी होने की क्या बात है ?

अशोक—आज मुझे अपना हृदय और मस्तिष्क अलग अलग प्रतीत होते हैं। हृदय के हाहाकार को ज्ञान की यह बातें केवल सन्तोष मात्र लगती हैं। पर गया तो गया। ठीक ही है—आचार्य जब मनुष्य को स्वयं

अपने ऊपर अधिकार नहीं तो दूसरे पर क्या हो सकता है? वह गया तो गया। पर—आचार्य है भीषण परिवर्तन—कुनाल इतना स्वेच्छाचारी! खैर, वह गया। (उपगुप्त के कन्धे पर सिर रख लेता है—उपगुप्त कुछ संकेत करते हैं। बालकों का एक दल आता है, गाता है)

गाना—

चपल चपला सा मोह प्रकाश।
इसके तन्तु कटुक अति अस्थिर, इनमें वज्र-विनाश।
जीवन का आकाश है, मण्डित जलद गँभीर।
विद्युत भ्रम है, वज्र है, सूर्य न समझो धीर।
न धारो इसकी किञ्चित आश।
श्याम सघन संघर्षका, है यह वीप्सित हास।
भूल न प्रोज्ज्वल रूप में, समझ न इसे हुलास।
यहाँ पर छल है बना विभास। चपल०

पर्दा गिरता है

स्थान–बन

[मगध का प्रान्त]

समय—संध्या

(कंचना और कुनाल कई साल बाद एक पत्थर के ढोंके पर)

कुनाल—(वीणा बजाता और गाता हुआ)

जगत-जीवन के सुख सपने।
माया-महाकाश में भरते मोहक रँग अपने—सपने—
जगत जीवन के सुख-सपने।
सहस सुमन खिल पड़ते—खिलते—सकुच सकुच झरते—
बस अतृप्त मादक सुँदरते—खिलते-झरते झरते-रे सपने!
जगत जीवन के सुख-सपने।

एक, दो, तीन—कंचना, कितने वर्ष सहज ही व्यतीत हो गये। कितनी शंकायें और कितने भय थे पहले-पर एक बार कूद पड़ने पर फिर कुछ भी तो न प्रतीत हुआ। मनुष्य अपने भय और कायरता से स्वयं ही कठिनाइयों की रचना करता है।

कंचना—या यों सही कि साहस और उद्योग कठिनाइयों को सरल बना देते हैं। और कोई महान शक्ति उसे सदा अपने प्रकाश से सहायता देती है।

कुनाल—ठीक कहती हो कंचना—बीती बातें हलकी लगती ही हैं। आते समय कष्ट कितने भयानक थे, जाते समय

कितने आह्लादकारी। पार हो जाने पर विपत्ति एक खेल सा लगती है।

कंचना—मुझे उस जंगल का आज भी स्मरण है—वहाँ जब बन में घुसते ही रात हो गयी थी और पास में कहीं गाँव तक न था। आदमी क्या पक्षी के पर की फड़-फड़ाहट तक नहीं थी।

कुनाल—जंगल तो हम लोगों ने बहुत पार किये, पर क्या तुम उस जंगल की बात कह रही हो जहाँ पेड़ों की डालों पर लटक कर रात बितानी पड़ी थी? कितनी घी भयानक वह रात्रि—आह·····

कंचना—हाँ—अब भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं—वह कालरात्रि अपनी सारी श्यामता के साथ पृथ्वी पर जमी हुई थी। बादलों ने घटाटोप घिर कर उसे और भी घुप कर रखा था। सिंहों की वह फूँक—गज भर पर उसकी आँखों की चमक-मसाल सी। अब तक के जीवन में वह दिन जब हमने अपने जीवन की समाप्ति समझली थी। अंतिम बार पिता जी से क्षमा-प्रार्थना की थी—

कुनाल—आँखें न होने का यही सुख है, कंचना! यदि मैं उस दृश्य को देख सकता तो और भी भयभीत होता—केवल कानों में पड़ने वाली शेर और जंगली जानवरों की दहाड़ ही काफी थी। कितना अन्तर हो जाता है, कंचना। वही हम जब शिकार को जाते थे शेर की आवाज उत्साह बढ़ाती थी, वही उस दिन शरीर को कँपा रही थी।

कंचना—मेह ने पढ़ कर रक्षा की। यद्यपि पेड़ पर लटकना

पड़ा, और भोगने के कारण भी कष्ट हुआ पर अंगली जानवरों का फिर वह शोर सुनाई न पड़ा—हाँ साँप आदि की फुसकार जरूर सुनाई दो।

कुनाल—रहने दो, कंचना। ये तो एक नहीं सैकड़ों बातें हैं। पर आज उनमें भय नहीं, आनन्द रह गया है खैर कुछ गाओ।

कंचना—(गाती है)

स्वर्णकर का अन्तिम उल्लास
सकल दिग्वधुओं का मृदुहास

सफल श्रमी के सुख से रञ्जित जीवन के विश्वास-स्वर्ण कर०

मञ्जु मुस्काकर सृष्टि निहार
समुद खगगण को उधर पुकार

पादप को मृदु थपकी देकर, भरकर गुञ्ज हुलास-स्वर्ण कर०

रमे खग-मृग में धड़कन बन
जगत में बन श्रम की विरमन

दिवस-देव फेला देते हो निद्रा का सुख-पाश-स्वर्ण कर०

(अशोक के गजाध्यक्ष का प्रवेश।)

राजा—स्वर्ग की मधु वर्षा। ऐसा आनन्द! सारा दुःख भूल गया, हृदय की सारी उत्तप्ताग्नि शान्त हो गयी-यह क्या आज ब्रह्मा और सरस्वती इस संसार को पवित्र करने आये हैं! या किसी दिव्य लोक की दिव्यात्मायें पर्यटन करने को निकल पड़ी हैं, या मगध की इष्ट देवी और यश अपने सुखपूर्ण चरम आनन्द को व्यक्त कर रहे हैं—कौन हैं? मेरा हृदय बालक उनकी ओर खिंचा जाता है।

(उनके पास पहुँच कर प्रणाम करके खड़ा हो जाता है और कहता है।)

गजाध्यक्ष—आप कौन हैं ?

कुनाल—भिक्षु—भगवान बुद्ध के अनुचर, धर्म मार्ग के तुच्छ किंकर।

गजा—आप कोई हों, एक बार अपनी वह मधुरिमा पूरित वंशी-ध्वनि फिर होने दीजिये। कैसा आनन्द था—उसे फिर बरसाइये। आप धन्य हैं, अपने इस मधुर राग से हमें भी धन्य कीजिये।

कंचना—(वंशी उठाते हुए)—धन्यवाद, जैसा आपका आग्रह।

(फिर बजाने लगती है।)

गजा—बहुत सुना पर ऐसा आज तक न सुना। तुम्हारे राग में प्रातः कालीन पुष्पों की मनोरम कोमलता भरी है, तुम्हारे गान में चन्द्रिका की शीतलता है। ऐसा मन करता है कि सब काम छोड़ कर आपके इस हृदय-स्पर्शी गाने को ही सुना करूँ। पर—आप कहाँ जायँगे कहाँ ठहरेंगे ?

कुनाल—कहीं भी, जहाँ हमें एक चटाई और दो टुकड़े रोटी मिल जायँ।

गजा—तो भगवन् आज मेरे गृह को ही पवित्र कीजिये। मेरा आतिथ्य स्वीकार कीजिये।

कुनाल—आपकी बड़ी कृपा है। हमें तो जहाँ भी प्रेमपूर्वक आश्रय मिल जाय वहाँ टिक रहना। आपके साथ चल सकते हैं।

(चलने को प्रस्तुत होते हैं)

कुनाल—पर, यह कौन देश है ?

गजा—मगध की राजधानी पाटलीपुत्र।

कुनाल—(कुछ स्तंभित होकर) पाटलीपुत्र, पर नहीं, हमें तो पाटलीपुत्र नहीं जाना, चलो लौट चलें।

गजा—न, महाराज आज—बस एक रात मेरी ही कुटी को पवित्र कीजिये। मेरे आप भगवान हैं—मैं आपको अब यों न जाने दूँगा। रात्रि होने आगयी है, पास में और कोई उचित स्थान भी नहीं। आइये, चले आइये।

कुनाल—भाई, हमें पाटलीपुत्र तो जाना ही नहीं, फिर……।

गजा—फिर क्या मुझ दीन के आग्रह की खातिर ही चलिये।

कुनाल—क्या क, अच्छा चलो, देखा जायगा।

७

स्थान—राजमार्ग

समय—प्रातः

पात्र—दो नागरिक

पहला—क्यों ? यह क्या महाराज अशोक की गजशाला में आज इतनी भीड़ क्यों लगी हुई थी ?

दूसरा—अरे क्या वहाँ तुम नहीं थे।

पहला—नहीं तो, आखिर बात क्या थी ?

दूसरा—मगर, तुम नहीं थे तो समझ लो तुम संसार की एक अलभ्य वस्तु न देख पाये। तुम अपने जीवन में एक स्वर्गीय आनन्द से वञ्चित रह गये।

पहला—अच्छा, ऐसी क्या बात थी भाई, बतलाओ तो सही।

दूसरा—बात यह है, अहा, अब वह वीणा की मधुर झनकार, वह मृदुस्वर-लहरी जैसे मेरे कानों में बज रही हो। सच ऐसा संगीत मैंने तो सुना नहीं ?

एक—तो क्या कोई गाना वाना हुआ था।

दूसरा—एक भिक्षु और दूसरा भिक्षुणी, दोनों ही दो चन्द्रमा थे !
वे युगल थे ऐसे कमल जो एक सर के हास हों,
सौहार्द्र सिक्त सुरञ्जना अनुराग के सुविकास हों।
वे प्रकृति के प्रतिनिधि बने अद्वैत थे और द्वैत थे,
वे एक में दो अक्षरों की संधि से समवेत थे।
वे दो कलाधर थे कला के बिम्ब के आदर्श थे,
वे विश्व के कौशल शिरोमणि का चरम उत्कर्ष थे।

याद एक थी सुख निर्झरी तो दूसरा पल गान था,
वह थी उषा की माधुरी, वह क्षितिज का मधु मान था
यदि एक थी उपवन कली, हर्षित नता भार से।
तो वह चिरन्तन हास था, विकसित रहा हो प्यार से।

एक—सच!

दूसरा—प्रेम, आनन्द और शील की त्रिवेणी थी, तुम न हुए, उस सुन्दरता के भण्डार में से धीरे धीरे संगीत की लहर उठती थी, मनुष्य के हृदय को स्पर्श करती हुई, वह और तीव्रतर होती हुई इस तारों से भरे अनन्त आकाश में ऊँची उठती; जनता मुग्ध-उसके हृदय की भावनायें उसके साथ न जाने किस स्वर्ग सुख का आनन्द उठातीं।

एक—ये आ कहाँ से गये?

दूसरा—महाराज के गजाधीश बाहर किसी कार्य वश गये हुए थे। वहाँ एकान्त में, जंगल के एक भाग में, एक पत्थर के ढोंके पर बैठे हुए ये अपने सहज स्वर में दिशाओं को उत्फुल्ल कर रहे थे। उनका स्वर वायु की लहर पर दिशाओं में भर रहा था। प्रकृति की वह सुन्दर सुषमा उनका वह रूप, और वह जादू भरा गीत!

एक—तुम तो बे तरह लट्टू हो रहे हो। तो वहाँ से गजाधीश इन्हें लिवा लाये?

दूसरा—हाँ। लट्टू होने की बात ही है। हृदय बार बार कहता है कि कहो, देखो और सुनो। तुमने देखा नहीं न इसलिये।

प्रस्थान—

८

स्थान—गजाधीश की गजशाला

समय—प्रातःकाल

कुनाल—कंचना, अच्छा नहीं हुआ—

कंचना—हाँ मेरा भी ऐसा ही विचार है। वह तो ग़नीमत है कि अभी किसी ने पहचाना नहीं, यही गजाधीश हमें ख़ूब जानता है—यहाँ का हमें कौन नहीं जानता—पर विकृति वेष होने के कारण पहचान नहीं सके। दूसरे उनको यह ध्यान ही न होगा कि हम यहाँ आ सकते हैं।

कुनाल—समय भूलने वाला है। यदि समय में भूलने की शक्ति न होती तो न जाने सृष्टि की कितनी दुःखमय अवस्था होती। पर कंचना, किसी को किञ्चित भी संदेह हो गया, तो उचित नहीं। पिताजी तक सूचना पहुँच जायगी।

कंचना—यही बात है। पर हमारा वेष इतना बदला हुआ है कि किसी का संदेह नहीं हो सकता। हाँ जल्दी चल दिया जाय—

कुनाल—कंचना—इसी मनोहर भूमि में हमने अपने जीवन के कितने दिन बिताये हैं। मुझे दीखता नहीं पर अब भी मैं यहाँ से सारे नगर में चक्कर लगा सकता हूँ।

मनुष्य भूल जाता है प्रकृति नहीं भूलती। यहाँ की प्रकृति मुझे पहचानती है कंचना।

कंचना—कुनाल—मैं तो देखती हूँ। बहुत सावधानी से अपने अश्रुओं को रोक पाती हूँ। एक एक वस्तु में मोह भरा पड़ा है। एक एक वस्तु मानों चिल्लाकर कहना चाहती है—क्यों कंचना हम से आँख बचा कर चली जा रही हो? क्या कंचना—अब मिलोगी नहीं?

कुनाल—रहने दो कंचना। जितना सोचो उतना ही दुःख। माँ की ममता भरी गोद से कहीं अधिक ममता मातृ-भूमि की होती है। यहाँ से जायेंगे—जायेंगे तो सही पर कंचना—एक नया दर्द साथ ले जायेंगे—पिता जी की·····उहूँ।

कंचना—कुनाल—मोह बढ़ रहा है—छोड़ो—प्रातःकाल को मातृ-वन्दना करके—छोड़ो, इस स्थान को छोड़ दो पिता की आज्ञा के व्रती हम—हमें मोह नहीं होना चाहिये। गाओ—

कुनाल—ठीक है। ठीक है—

(गाता है।)

मन मानस में प्रेम तरङ्गें उठा रही तू माता री,
किन कोमल भावों में जीवन जगा रही तू माता री?
तेरे मृदु उपकार ज्योति से पथ प्रशस्त उज्ज्वल करते।
मद-मधु-हरित-सचित्र प्रकृति के वेष अमित श्रद्धा भरते।
किस श्री को शोभा से जगमग लुभा रही तू माता री? मन०॥

६

स्थान—राजमार्ग

[नेपथ्य में वही सुन्दर राग। एक परिचारक का प्रवेश]

पारिचारक—कैसा हृदय अपनी ओर खींचे लेता है! महाराज ने यदि इसको बुला भेजा है तो अच्छा ही किया है हमारा भी सौभाग्य होगा। ऐसा संगीत, ऐसा फिर इस जीवन में क्या मिलने का है। इतने बड़े होगये, दाड़ी मूछों के बाल खिचड़ी होगये—पर इस एक—दो—तीन—न—न—भूला—चार कम तीन बीसी की उत्तर में कभी ऐसी मधुर तान सुनने को न मिली—तो आगे को कौन जानता है। हाँ, कुछ कुछ याद पड़ता है—उन कोमल राजकुमारों की स्वर-लहरी भी—वह भी मन मोहक थी। केवल कुछ याद रह गया है। कितने वर्षों की बात होगयी पर उस काल में तो बात ही और थी, तब तो हमारा गाना भी अच्छा हो जाता था अब तो बहुत दिनों से नहीं गाया। देखूँ तो सही मैं भी गाकर—

हमारे सजन
हमारे सजन
आँख मिचकाय पुपलौ म्हौड़ौ पिचकाय देउ।
कबहुँ झँकाय देउ टूटे रदन, हो—हमारे सजन।

शोभा तुम्हारी पै ये सुन्दर।
आम पीले पड़ गये,
दाने चमकते थे विही के।
वे भी मानो झड़ गये—
दाँत हाथी के तुम्हारे।
कुंद के से फूल थे,
लूके झंपा से झड़ गये।
अब काहे मटकाया म्हौं प्यारे ललन॥
हमारे सजन
हमारे सजन

(एक दूसरे नागरिक का प्रवेश।)

दूसरा नागरिक—ओहो-अब तो ठूंठों में से बालें निकलने लगीं—लू लगे आमों में से रस टपकने लगा सूखे तालाबों में से सोता चलने लगा—राख में गर्मी आने लगी—आज आपको यह क्या सूझा श्रीमान्?

परिचारक—क्यों, क्या मैंने कुछ खराब गाया?

दूसरा नागरिक—कभी नहीं, आप तो पुराने गवैयों में से हैं, आप—और बुरा गायें? हरगिज नहीं।

परिचारक—यह—आपको बेटा जीय, यह। आपका बेटा जीये। है कै नहीं?

दूसरा नागरिक—सच—आपका सा गाना गाने का जो साहस भी करे उसे आप गर्दभ ही समझिये—और भी किसी की मजाल नहीं हो सकती। उन दो कल के बच्चों ने यह मगध सर पर उठा रक्खा है आपका सामना·····।

परिचारक—हैं ! हैं ! क्या सच, उनका गाना मुझसे भी अच्छा नहीं ?

दूसरा नागरिक—नहीं जो मैं दावे के साथ कह सकता हूँ।

परिचारक—नहीं-ऐं-नहीं, फिर सुन लीजिये और तब बताइये कैसा रहा; सच, सच बताना।

दूसरा नागरिक—अच्छा आप गाइये।

परिचारक—कुड़मुड़ हुइगौ करेजवा राम—
बिना नून की रोटी परोसी।
दहिया मे रह गयो सहेजवा राम॥
धत् तेरा चूल्हा, धत् तेरी चक्की।
रेत मिली रोटी, कच्ची और पक्की॥
खाइके हो गये निहलवा राम—

दूसरा नागरिक—वाह वाह-वाह-हमने तो ऐसा गाना सुना नहीं भाई।

परिचारक—तुम्हारा बेटा जीए—क्या यही बात है ? भाई मैंने तो बहुत दिन से गाना छोड़ दिया था। आः—अगर तुमने कभी पहले बताया होता तो सच, अब तक बहुत बड़े औहदे पर होता।

दूसरा नागरिक—जरूर होते—क्यों न होते।

परिचारक—नहीं अब आज महाराज को अपना गाना सुनाऊँगा—क्यों, तो क्या सच मेरा गाना इन दोनों से भी अच्छा है।

दूसरा नागरिक—और क्या झूँठ—

परिचारक—नहीं, झूँठ तुम काहे को बोलोगे भय्या, गाया होगा ऐसा ही। आखिर मैंने बचपन में डेढ़ डेढ़ सेर—सुना, डेढ़ डेढ़ सेर घी पीया है। उसी की तरी है—

दूसरा नागरिक—सच मानो। पर अब जा कहाँ रहे थे, इतने तड़के—

परिचारक—अर-र-र'''''सो तो मैं बिल्कुल ही भूल गया था पर-खैर-अभी जाता हूँ। उसे करते कितनी देर लगती है—इन गवैयों को लाना भी कोई बड़ी बात है अब तक मैं उनके गाने को अच्छा समझता था। पर अब तो मुझे अपना ही गाना अच्छा लगता है; क्या सच—है न मेरा गाना।

दूसरा नागरिक—नहीं, देखो, मेरी बात पर ख्याल मत करना मैं तो यों ही झूँठ कह रहा था।

परिचारक—झूँठ-झूँठ, तुम झूँठ बोले-नहीं ऐसा हरगिज नहीं, मैं तो नहीं समझता।

दूसरा नागरिक-हाँ, झूँठ ही कहा था, यों ही।

परिचारक—मजाक किया था तो आपने ? मुझ बुड्ढे होने वाले से''''''

(दुखी होकर)

तुम सुबह ही सुबह कहाँ से आगये अनिष्ट करने के लिये। भगवान् भला करे, तुम्हारे पास ठहरना भी बुरा है।

(चला जाता है।)

दूसरा नागरिक—यह भी एक हो मजा रहा। बुड्ढे होने पर दाँतों के साथ बुद्धि भी झड़ जाती है। आपको भी क्या सूझा था-गाना। ठहरो-हम भी आते हैं, साथ साथ चलेंगे-अब तो यारी आपकी दोस्ती हो गयी।

प्रस्थान

१०

स्थान–अशोक का शयन-कक्ष ।

समय—रात्रि

[नेपथ्य में कुनाल के गाने की ध्वनि]

अशोक—(शय्या पर बैठा हुआ) बिल्कुल वही—सचमुच कुनाल की सी ध्वनि है । उसका कंठ-स्वर आज भी मेरे कानों में उसी प्रकार गूँज रहा है । यह उसी का कंठ स्वर है । कुनाल, कुनाल, कहीं तुम्हीं हो ! अवश्य तुम्हीं हो । तुम्हारे स्वर की यह लहरी, हृदय पर रक्खे हुए वज्र-भार को दूर किये दे रही है । तुम्हारा स्मरण मेरे मस्तिष्क में अनेकों नयी नयी बातें ला रहा है । आज कहीं तुम्हीं मिल जाओ ।

(चिन्तित हो जाता है)

तुम न जाने क्यों भिक्षु बन गये । मेरे हृदय में एक कसक बनी रह गयी, न जाने क्यों भिक्षु बन गये ? क्यों मेरा इस वृद्ध गोद में से एक दम ममता छोड़कर दूर चले गये ?

(चिन्तित हो जाता है)

कहीं किसी और ही की ध्वनि हुई । कभी कभी एक सी स्वर-लहरी भी तो हो जाती है कोई आश्चर्य तो है नहीं ? सम्भव है मेरा भ्रम निकले

कहीं कुनाल अब आगया ? अब क्या आयेगा, पर आ भी सकता है।

(चुप हो जाता है)

बेटे-बेटे, कुनाल ! (सँभलकर) बहुत देर हो गयी पर वह लौटा नहीं, यहाँ पीछे हो तो उसकी आवाज आ रही है।

(परिचारक का प्रवेश)

क्यों आगये ?

परिचारक—हाँ महाराज वे द्वार पर हैं।

अशोक—बुला ला।

(उसी ओर देखता हुआ) ये आये, ये अवश्य कुनाल और कंचना है। मेरे कुनाल और कंचना।

(अपने हाथों को कसकर हृदय पर रख लिया है।)

अहः कैसा दुखद वेष है, अशोक के पुत्र और पुत्र-वधू आज यों फिर रहे हैं।

(कुनाल और कंचना का प्रवेश। प्रणाम करते हैं।)

अशोक—आ''''आ''''आओ। (हृदय से लगाता हुआ।)

(दोनों बैठ जाते हैं—कुछ देर सन्नाटा हो जाता है।)

अशोक—तुम्हारे गाने की बड़ी प्रशंसा सुनी है।

कुनाल—आपके चरणों की कृपा है।

अशोक—तुम्हें पुरस्कार देने का विचार है।

कुनाल—हम भिक्षु हैं केवल भोजन, बस—

अशोक—तुम्हारे नाम से एक विहार बनवाने का विचार है। तुम अपने पिता का नाम और अपना पता बताओ।

कुनाल—न पूछें—महाराज, न पूछें।

अशोक—न, बताना होगा।

कुनाल—महाराज—मेरा हृदय टूट रहा है। मैं—भारत के सम्राट् प्रियदर्शी अशोक का पुत्र।

अशोक—बेटे कुनाल—कुनाल—मेरी कंचना।

(दोनों को गले लगाता है)

अशोक—बेटे कुनाल, तुम बिना मुझसे कुछ कहे ही भिक्षु क्यों हो गये। तुमने थोड़ी देर भी यह न सोचा कि इतना बड़ा साम्राज्य सभालने वाला अशोक भी तुम्हारे वियोग में पागल हो जायगा—और तुम्हारी ये आँखें—ये क्या हुई ?

कुनाल—बिना कुछ कहे ?—नहीं पूज्यवर कुनाल कभी अपने पूज्य की आज्ञा के बिना कुछ नहीं कर सकता।

अशोक—मेरी आज्ञा—मेरी आज्ञा कैसी।

कुनाल—आपकी मुद्रा से मुद्रित पत्र पहुँचा। उसी में यह आज्ञा थी—उसी आज्ञा के अनुकूल मैंने अपनी आँखें निकाल डालीं और भिक्षु वेष धारण किया।

अशोक—मेरी और ऐसी आज्ञा—हे भगवान् मैं यह क्या सुन रहा हूँ ? मेरी ऐसी आज्ञा को तुमने पैरों तले कुचल क्यों न डाला बेटे ?

कुनाल—आपका पुत्र—भला मैं ऐसी बात कभी सोच भी सकता था। मैं क्या ऐसा पाप करके अपनी इस भारत माँ को लज्जित करता। इसी भू के दूध से पले राम का आदर्श मेरी प्रेरणा बनकर मेरे सामने था।

अशोक—अः तो मेरी आज्ञा थी ?

कुनाल—आपकी मुद्रा स्पष्ट थी—राजकीय पत्र था।

अशोक—मेरी मुद्रा—मेरी मुद्रा—यही मुद्रा ?

कुनाल—यही—

अशोक—छल—छल—षड्यंत्र—ओः आज मालूम हुआ। आस्तीन का साँप। मुझसे मेरे सर्वस्व को छीन कर मुझे मिट्टी में मिलाने वाला—छल—षड्यंत्र। कुनाल—तुम जाओ अपने वस्त्र बदलो। कंचना—आ! तुमको कितना कष्ट हुआ। पर मैं सब देख लूँगा यह छल—सब शोध किये लेता हूँ। मेरा तो संसार ही उजड़ चुका था। परिचारक!

(परिचारक का प्रवेश—)

परिचारक—देखो-कुनाल और कंचना को इनके गृह का मार्ग बताओ।

परिचारक—हमारे कुमार-प्यारे कुमार।

अशोक—हाँ ले जाओ इन्हें। देखते हो क्या दशा हो रही है।

परिचारक—मैं तो पहचान भी न सका। भगवन् यह क्या दशा हो गयी हैं, चलिये।

अशोक—कुनाल—जाओ, स्वस्थ हो स्वस्थ होने पर मिलूँगा।

(प्रस्थान—परिचारक, कुनाल, कंचना—)

अशोक—षड्यंत्र—मेरी यह मुद्रा—काकु है?

(दूसरे परिचारक का प्रवेश)

देखो प्रधान मन्त्री को भेजो।

अशोक—कुछ कुछ समझ में आ रहा है। यह मुद्रा मेरी उँगली से कभी अलग तो हुई नहीं। मैं भूल रहा हूँ। हुई है, एक बार—केवल।

प्रधान मं०—(प्रवेश करके प्रणाम करता है)

अशोक—मंत्रिन—मेरी यह मुद्रा क्या कभी मेरी इन उँगलियों से पृथक हुई? आपको कुछ स्मरण है?

प्रधान मं०—महाराज, एक बार एक दिन के लिए यह मुद्रिका

आपने बरदान रूप में महारानी को दे दी थी।

अशोक—(उछल कर)

ठीक—ठीक—सब समझ गया। मंत्रिन् राज्य परिषद् को बुलाओ।

(मंत्री का प्रस्ताव)

तिष्यरक्षिते ! यह तुम्हारी चाल है। तुम्हारी ! मैं सब समझ गया। तुमने मेरी सेवा करके वह मुद्रिका एक दिन के लिये बरदान में माँगी और उसका अभिशाप की तरह प्रयोग किया। मेरे पुत्र की—अपने पुत्र को अन्धा बनाने के लिए उसे दर दर भटकाने के लिए तुमने इस छल का प्रयोग किया—आज मेरे हृदय में बर्बरता सी उछल रही है—बचो तिष्यरक्षिता—अशोक के भयंकर रूप से बच सको तो बचो—पर मुश्किल है। गिनलो अपनी घड़ी गिनलो। तुम जैसी पापीयसी का संसार में रहना संसार को असुन्दर बनाना है, उसे पापागार बनाना है। तुम्हारी दुष्प्रवृत्तियाँ संसार को सड़ा डालेंगी—तुम जितना शीघ्र ही इस संसार से [illegible] उतना ही अच्छा है।

प्रस्थान

११

स्थान—राज्य-परिषद् का भवन

समय—प्रातः

[सब सभासद यथास्थान बैठे हैं । अशोक का प्रवेश—सभी सभासद उठ खड़े होते हैं फिर अभिवादन के अनन्तर यथास्थान बैठ जाते हैं ।]

अशोक—मंत्रिवर ! महारानी, तिष्यरक्षिता को यहाँ उपस्थित करो ।

मंत्री—महाराज, प्रियदर्शी ।

अशोक—आज मैं कुछ नहीं सुनना चाहता—बुलाओ ।

(एक परिचारक जाता है)

अशोक—मंत्री—जल्लादों को बुलाओ—

उप—प्रियदर्शी—ठहरो—

अशोक—ठहरो—आचार्य, मुझे क्षमा करें, आज मैं एक दिन के लिये पूर्ण जन्मुक्ति चाहता हूँ । आप पूज्य हैं—आप मुझे क्षमा करेंगे यदि आज मैं अपने पद की पूर्ण सामर्थ के साथ आपके आदेश पर ध्यान न दूँ ।

उपु०—शांत होकर ।

अशोक—शान्ति कहाँ—आचार्य ! मैं आपसे विनीत प्रार्थना करता हूँ, आज आप मुझ से कुछ न कहें । निषेध न करें—मैं आज किसी की नहीं सुनूँगा । बुलाओ जल्लादों को—

(एक परिचारक जाता है)

जो व्यक्ति अपने औचित्य की सीमा को उलंघ जाता है, अपनी दुष्टता की कालिमा से इस संसार के धवल चमक को कलंकित करना चाहता है—उसे और अधिक गंदगी फैलाने के लिये अवकाश न देना ही उचित है। महारानी तिष्यरक्षिता ने—

(तिष्यरक्षिता का प्रवेश)

अपने षड्यंत्र से कुनाल को घोर यातना से पीड़ित किया—उसे अन्धा बनवा दिया—मैं आज्ञा देता हूँ कि इसके दण्ड स्वरूप उसकी आँखें निकाल ली जायँ और फिर उसका सिर धड़ से प्रथक कर दिया जाय। यह मेरी आज्ञा है। मंत्री! जल्लादों से कहो कि वह अपना काम करें।

मंत्री—जल्लादो, तुम अपना काम करो—

(जल्लाद आंख फोड़ने बढ़ते हैं। एक दम कुनाल का प्रवेश)

कुनाल—ठहरो—ठहरो—पिताजी! सम्राट्! मैं कुछ भिक्षा मांगता हूँ।

अशोक—आओ—कुनाल। मांगो, महारानी ने तुम्हारा अपराध किया है। तुम जो माँगोगे वही दण्ड इसे दिया जायगा। ठहर जाओ, जल्लादो कुनाल जो कहें वैसा ही करना होगा। सचमुच इस दुष्टा के लिए मेरी बताई सजा तो सजा कुछ नहीं। बोलो कुनाल क्या चाहते हो?

कुनाल—महाराज, क्या जो मैं माँगूंगा वही मिलेगा।

अशोक—निस्सन्देह।

कुनाल—पिताजी—मैं यह भिक्षा मांगता हूँ कि माता को क्षमा कर दिया जाय।

(आकाश से पुष्पों की वर्षा)

उपगुप्त—धन्य हो—कुनाल धन्य हो।

(भगवान् बुद्ध और आनन्द प्रकट होते हैं)

बुद्ध—अशोक ! यह तो पुण्यों का फल है—

आत्मा को क्षमा और दया से सद्मार्ग पर ला, उससे घृणा कर अथवा उसके शरीर को नष्ट कर उसके विकास को बिल्कुल रोक ही मत दे।

अशोक—पुत्र—तुमने बचालिया—मुझे पाप से बचा लिया तेने तथागत के दर्शन कराये—उनका उपदेश पान कराया—

तिष्यरक्षिता—मुझे क्षमा करो—मेरे पापों को भस्म करदो—मैं इसी आग में जल मरूँगी।

(सब भगवान् बुद्ध को नमस्कार करते हैं।)

बुद्ध—आनन्द देखते हो, क्यों उस दिन की वंशी ने उस सिंह को विमोहित कर लिया था, क्यों तुमने देखा, ऐसी वंशी सभी नहीं बजा सकते ?

पटाक्षेप